इकाई 25 जल विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य

25.1 प्रस्तावना

25.2 जल की उत्पत्ति और परिभाषा

25.3 जल का स्वरूप एवं गुण

25.4 जलवायु मण्डल में जल की स्थिति

25.5 जल प्रकार के आधार पर जल के विभिन्न नाम

25.6 जल चक्र

25.7 जल रोग कारक तथा निवारक

25.8 जल संरक्षण

25.9 सारांश

25.10 उपयोगी पुस्तकें

25.11 अभ्यास प्रश्न

25.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

25.0 उद्देश्य

- जल का स्वरूप एवं गुणों से परिचित कराना।
- जल के चिकित्सीय गुणों का ज्ञान कराना।
- जल संरक्षण की आवश्यकता व महत्त्व का ज्ञान करना।
- जल की उपलब्धता तथा गुणों का ज्ञान करना।

25.1 प्रस्तावना

ब्रह्माड के तत्त्व रूप जल न केवल प्राणिमात्र अपितु समस्त दृश्यमान चेतन जगत का मूल है। जीव की उत्पत्ति और पालन का सम्पूर्ण चक्र जल की उपस्थिति से ही सम्भव है। ऋग्वेद में कहा गया है कि जब पर्जण्य अपने जल से पृथ्वी की रक्षा करता है अर्थात् पृथ्वी को सींचता है, तब वर्षा के लिए हवाएँ चलती है। बिजलियाँ चमकती है। वनस्पतियों से अंकुर फूटकर वृक्ष रूप में विकसित होता है। अन्तरिक्ष जल की बूंदों को भूमि पर प्रेषित करता है, जिससे यह भूमि संसार के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु समर्थ हो जाती है।[1] जल एक रंगहीन, गंधहीन, स्वादहीन, पारदर्शी, वाष्पशील और गतिशील द्रव है। जो अलौकिक गुणों से सम्पन्न है। मनुष्य की शारीरिक संरचना में भी जल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जल शरीर के तापमान को नियंत्रित करके रक्त संचार की स्वाभाविक गति को बनाये रखने में सहायक होता है। जल की कमी अनेकों असाध्य रोगों का कारण बन सकती है। वेदों में सृष्टि की उत्पत्ति जल से ही कही गयी है–

[1] ऋग्वेद 5/83/4

आपो ह यद् बृहतीविश्वमायन् गर्भ दधाना...।
ततो देवानां समवर्ततासुरेक....

अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वत्र जल ही जल व्याप्त था। इस पृथ्वी मण्डल पर 29 प्रतिशत भूमि और 71 प्रतिशत जल है। शरीर वैज्ञानिकों के अनुसार मानव–शरीर में भी लगभग 65 प्रतिशत जल की मात्रा होती है। पृथ्वी और मानव शरीर में तीन चौथाई जल की मात्रा होती है। अग्नि, जल, वायु आदि देवता समष्टि में ब्रह्माड में व्याप्त हैं तो व्यष्टि में वह सब जीव में व्याप्त होते हैं कहा भी जाता है–**"यथा पिण्डे तथा ब्रह्याण्डे"**।[2]

औषधि के रूप में भी जल का प्रयोग किया जाता है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में शुद्ध जल को 'विश्वभेषजी' अर्थात् सारे रोगों का इलाज करने वाला कहा है। जल ही सुखी और समृद्ध जीवन का आधार है। शतपथ ब्राह्मण में कहा है–**"प्राणा वा आपः"** अर्थात् जल को प्राण की संज्ञा दी है।[3]

"जलस्य विज्ञानम् जलविज्ञानम्" जल तत्त्व का विशेष ज्ञान प्राप्त करना जल विज्ञान है। जिसमें पृथ्वी पर उपलब्ध जल के सभी पक्षों का अध्ययन किया जाता है। जैसे जलीय घटनाओं (बाढ़ आदि) का अध्ययन, जल के गुण एवं दोषों का अध्ययन, जल वितरण व्यवस्था, भूतल पर जल–स्थिति का अध्ययन तथा जीवों और उनके परिवेश पर जल के प्रभावों इत्यादि का अध्ययन किया जाना सम्मिलित है।

25.2 जल की उत्पत्ति और परिभाषा

वैदिक साहित्य के अनुसार जल की उत्पत्ति वायु और तेज की रासायनिक क्रिया का ही परिणाम है। वेदान्तसार के अनुसार माया तमस्–प्रधान विक्षेपशान्ति वाले अज्ञानाधारित चैतन्य से सर्वप्रथम आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी की उत्पत्ति बतलायी है। यथा–**तमः प्रधानविक्षेपशक्तिमदज्ञानोपहित–चैतन्यादाकाशः, आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अन्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी चोत्पद्यते**।[4]

तैत्तिरीयोपनिषद् की ब्रह्मानन्दवल्ली में भी जल की उत्पत्ति का मूल कारण ब्रह्म इच्छा, ब्रह्म इच्छा से आकाश, आकाश में शब्द होता है, उसके बाद वायु उत्पन्न होती है। वस्तुतः वायु के परमाणु ही सूक्ष्म रूप से शब्द के आघात से पृथक् होते हैं। जिससे वायु के परमाणुओं में संचरण करने और घर्षण से क्षोभ उत्पन्न होता है। परिणामस्वरूप अग्नि की उत्पत्ति होती है तथा वायु–अग्नि के संयोग द्वारा अग्नि से जल की प्राप्ति होती है।

एतस्माद्वा आत्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी...।

हिरण्यगर्भ सूक्त के अनुसार सर्वप्रथम जलमय लोकों की सृष्टि जलगर्भ वाले हिरण्याण्ड की रचना की। यथा–

2 ताण्ड्य ब्राह्मण
3 ताण्ड्य ब्राह्मण 9/9/4
4 वेदान्तसार, सूत्र 57

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।[5]

प्रश्नोपनिषद् में प्राणरूप जल ही व्यापक रूप से जीवन दायिनी शक्ति के रूप में वर्णित किया गया है। प्राण ही अग्नि रूप के द्वारा तप कर बादल, इन्द्र, वायु, पृथिवी 'रयि' अर्थात् सम्पूर्ण स्थूल प्राणि समुदाय और अमृत के रूप में प्रकट होती है।

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्यः एष पर्जन्यो मघवान् एष वायुः।

एषः पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं च यत्।।

अरा इव नाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।

ऋग्यजूँषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च।। (प्रश्नोपनिषद् 2.5)

अर्थात् सभी तत्त्व प्राण में निहित है और प्राण जल में प्रतिष्ठित है।

सृष्टि का उपादान कारण तत्त्व जल अर्थात् 'आपः' ही है। इसीलिए मनुस्मृति में भी कहा गया है–

सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।

अप एव ससर्ज्जादौ तासु बीजमवासृजत्।। (मनु. 1/7)

समस्त विश्व को व्याप्त करने के कारण अपतत्त्व को 'आपः' तथा समस्त चराचर जगत् का वरण करने के कारण वारि कहा जाता है।

जल शब्द की व्युत्पत्ति हेतु व्याकरण, निरुक्त तथा शब्दकोश, तीनों प्रकार के शास्त्र परस्पर उपयोगी सिद्ध होते हैं। उनके अनुसार 'जल घातने' धातु से अक् प्रत्यय के योग से तथा 'जल–अपवारणे' धातु से अच् प्रत्यय के योग से जल शब्द की व्युत्पत्ति होती है, जिससे वेगजनित आघात प्रहार, अपवारण (दूर करना), आच्छादन (ढकना) अर्थ वाला जल होता है।[6] पदार्थवादी ऐसा प्रतिपादित करते हैं कि जल में वेग जनित संस्कार होता है। संसार में जल का प्रवाह रूप वेग अनुभव भी किया जाता है। वह आघातन के कारण है और द्रव्यत्व के कारण जल का अपना कोई आकार एवं रूप नहीं होता है। अपितु जिस आकार एवं रूप को प्राप्त करता है। उसी में अन्तर्निहित हो जाता है। अमरकोश में जो शीतल करता है वह जल है। यथा–**'जलति जलमिति'**[7]वैदिक साहित्य में जल के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग यथा– आपः, घृतम, वारि, पय इत्यादि 27 नामों की चर्चा अमरकोश के वारि वर्ग के अन्तर्गत की गयी है। निरुक्त में जल शब्द के लिए लगभग सौ शब्दों का उल्लेख प्राप्त होता है।[8] जल विभिन्न दोषों का निवारक है तथा प्राणी जल से जीवन को धारण करते हैं। निश्चय ही जल सुख प्रदान करता है। **जलम् इति दोषान् जलति अपवारयति इति जीवनं जीवयते प्राणिनः अनेन इति नीरम् निश्चयेन राति ददाति सुखम् इति।**[9] जल के स्वरूप की चर्चा वैदिक के अतिरिक्त लौकिक साहित्य में भी प्राप्त होती है। महाभारत में जल के स्वरूप का परिचय देते हुए कहा गया है कि–

5 ऋग्वेद 4/1/2/1
6 अपवारयति इति अच्। अमरकोशः, वारिवर्ग, पृष्ठ 89
7 नामलिङ्गगानुशासनम् अमरकोशोद्घाटनटीका वारिवर्गः 3
8 निरुक्त 1.12
9 निघण्टु 2.7

अपां नारा इति पुरा संज्ञाकर्म कृतं मया।
तेन नारायणोऽप्युक्तो मम तत् त्वयन् सदा।।[10]

जल जीवन का आधार है। जल के बिना सम्पूर्ण चराचर जगत् की उत्पत्ति, संवर्धन एवं संरक्षण सम्भव नहीं है।

25.3 जल का स्वरूप एवं गुण

जल के स्वरूप में उसका आत्मतत्त्व 'रस' कहा जा सकता है। जल रसात्मक है। रसतन्मात्रा से जल–महाभूत की उत्पत्ति सांख्यादि दर्शनों में मानी गयी है। वराहमिहिर ने बृहत्संहिता, अध्याय 54 में भूमिगत जल का ज्ञान प्राप्त होता है, उस धर्म और यश को देने वाले दकार्गल को कहते हैं। जिस तरह मनुष्यों के शरीर में नाडियाँ होती है। उसी तरह भूमि में भी ऊँची–नीची शिराये होती है। आकाश से केवल एक स्वाद वाला जल पृथ्वी पर गिरता है। किन्तु वही जल विशेषता से तत्तत् स्थानों में अनेक प्रकार के रस और स्वाद वाला हो जाता हो जाता है। यथा–

धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतोऽहं दकार्गलं येन जलोपलब्धिः।
पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः।।
एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषात्।
नानारसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव।।[11]

श्वेत वर्ण की मिट्टी में स्थित जल कषाय रस, काली मिट्टी में मधुर रस, पाण्डुर (पीत धवल) मिट्टी में तिक्त रस, नील देश में कषाय–मधुर रस, क्षार मिट्टी में लवण रस, कपिल वर्ण की मिट्टी में क्षारत्व गुणयुक्त तथा मिश्रित लक्षण युक्त भूमि में मिश्रित गुण वाला जल होता है।

जल महाभूत की अधिकता वाले देश में जल मधुर रस, पृथिवी महाभूत की अधिकता वाले देश में लवण–अम्ल रस, अग्नि महाभूत की अधिकता वाले देश में तिक्त–कटु रस, वायु महाभूत की अधिकता वाले देश में कषाय रस वाला जल होता है। आकाश महाभूत की अधिकता वाले देश में अव्यक्त रस वाला जल होने से गुण में अन्तरिक्ष जल के सादृश गुण वाला होता है। पवित्र, काली एवं श्वेत मिट्टी युक्त जल सूर्य की किरणों तथा वायु से आहत जल भी दिव्य जल के समान होता है। जल जीवन का प्राण धारक, तृप्ति कारक, हृदय के लिए हितकारी, प्राणि मात्र हेतु सुख कारक, बुद्धि–प्रबोधन, स्वच्छ, मधुरादि अव्यक्त रस वाला, जिह्वेन्द्रिय प्रिय, शीत, पवित्र, अमृत के समान, सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से ऊपर खींच कर पुनः नीचे गिरने से लघु, वात–कफ नाशक, शीतल, जीवन तथा सौम्यत्व के कारण पित्त, रक्त एवं विष को विनष्ट कर देता है। गंगा का जल आकाश से गिरता हुआ सूर्य, चन्द्र एवं वायु से स्पर्श होकर देश काल के अनुसार हित व अहितकारी होता है। अर्थात् जिस स्थान को प्राप्त होता है उसी के गुण धर्म वाला हो जाता है। यथा–

जीवनं तर्पण हृद्यं ह्लादि बुद्धिप्रबोधनम्।
तन्वव्यक्तरसं मृष्टं शीतं शुच्यमृतापमम्।।
सूर्योद्धृतप्रमुक्तत्वाल्लघु वातकफापहम्।

[10] वनपर्व 1/89/3
[11] बृहत्संहिता, दकार्गलाध्याय 1–2

शैत्यजीवन सौम्यत्वैः पित्तरक्तविषार्तिजित्।
गङ्गाम्बु नभसो भ्रष्टं स्पष्टं त्वर्केन्दुमारुतैः।
हिताहितत्वे तद्भूयो देशकालावपेक्षते।।[12]

रसरूप जल नित्य होने के कारण कभी भी नष्ट नहीं होता है अपने प्राकृतिक रूप में रहता है। निरुक्त के अनुसार जल को अक्षर कहा जाता है–

"न क्षरति क्षीयते कदाचिदपीति वा"[13]

जल में रूप, स्पर्श, संख्या परिमाण पृथक्त्व संयोग विभाग, परत्व, अपरत्व, वेग, गुरुत्व स्नेह और द्रवत्व गुण, गमन, उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन और प्रसारण ये चौदह कर्म तथा जलत्व सामान्य होता है। इन्द्रिय विषय रूप में जल शरीर में विविध परिमाणत्व को प्राप्त करता है। इस प्रकार जल का द्रवत्व सिद्ध होता है। तन्मात्रा के रूप में रस गुण विशेष से रहित अव्यक्त होता है। कार्यरूप में षड्रसों की दृष्टि से अव्यक्त मधुर रस गुणभाव से जल पर आश्रित रहता है। 'त्वचा' इन्द्रियाँ के द्वारा ग्राह्य गुण में स्पर्श कहा जाता है–

स्पर्शस्तत्रत्वगिन्द्रियग्राह्यः त्वचः स्यादुपकारकः।[14]

सामान्यतः द्रव्यत्व जाति से युक्त शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तरल और स्निग्ध जल का स्वरूप जाना जाता है। महर्षि कणाद **'रूप रस स्पर्शवत्य आपो द्रवा स्निग्धा'** इस प्रकार जल का लक्षण प्रतिपादित करते हैं। आचार्य विश्वनाथ न्यायपंचानन न्यायसिद्धान्तमुक्तावली में जल में चौदह गुणों को स्वीकार करते हैं–

स्पर्शादयोऽष्टौ वेगश्च गुरुत्वं च द्रवत्वकम्।
रूपं रसस्तथा स्नेहो वारिण्येते गुणाः स्मृता।।[15]

आयुर्वेद में हिम के गुण इस प्रकार वर्णित है–

हिमन्तु शीतलं रुक्ष्यं दारुणं सूक्ष्ममित्यपि।
न तद्दूषयते वातं न च पित्तं न वा कफम्।।

अर्थात् बर्फ तो शीतल, रुक्ष, कठोर और सूक्ष्म (पतला) होता है। वह वात, पित्त और कफ को दूषित नहीं करता है। सूक्ष्म हिमकणों का एक द्रवीभूत रूप ओस अथवा ओस की बूँदे होती है। शरद् ऋतु में प्रातः काल के समय पत्तों में देखी जा सकती है।

उत्कण्यत्यतितरां पवनः प्रभाते,
पत्रान्तलग्ननुहिनाम्बुविधूमानः।

अर्थात् प्रभातकाल में पत्ते के मध्य में स्थित ओस की बिन्दू से छूकर बहता हुआ पवन अत्याधिक उत्कष्ठित करता है।

वाष्परूप जल 100° सेटी.मीटर तापमान में ऊष्मा के द्वारा वाष्परूप में परिवर्तित होता है। यह तो जल का गैस रूप है। इस पृथिवी पर सर्वदा ही सूर्य की ऊष्मा से हिम जल के रूप में, जल वाष्प के रूप में बदलता है। यह वाष्प हल्का होने के कारण

[12] अष्टाङ्गसङ्गहः, अध्याय 6/3–5
[13] निरुक्तम् 1/12/5
[14] न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, गुण खण्ड 103
[15] न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, प्रत्यक्ष खण्ड 1/31

ऊपर ही जाता है। जब जल का अत्यधिक आग का संसर्ग होता है, तब द्रव हुए जल में परस्पर स्निग्ध भाव के द्वारा स्थित परमाणु पतले हो जाते हैं। तब वे लघु होते हैं और वायु के द्वारा धारण किये जाते हैं। वायु अग्नि के संयोग से जल को धारण करता है। इस प्रकार जल द्रव से वायुत्व को प्राप्त करता है। वायु में ही जल परमाणु व्याप्त होते हैं। ताप के दूर होने पर स्वाभाविक शीतगुण के कारण वायु को शीतल स्पर्श वाला बनाता है। वायुस्वरूप के द्वारा जल वायुमण्डल में आर्द्रता पैदा करने वाले जलवायु योग का हेतु होता है। इस प्रकार वायुरूप में वह अन्तरिक्ष को और द्रवरूप में पृथ्वी को आनन्द पहुँचाता है। यजुर्वेद में जलधारण करने वाले वायु की आर्द्रता के लिए स्तुति की गयी है।

समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः
शम्भूर्मयोभूरभि मा वहि स्वाहा।।

जलगर्भ होने के कारण ही वायु मेघ रूप में वृद्धि को प्राप्त होता है। वस्तुतः जल का स्वरूप सत्त्व और तम की अधिकता वाला, रसात्मक और द्रव्यात्मक कहा जाता है और वह तीनों लोकों में व्याप्त होने के कारण अनन्त है। वायुपुराण में कहा भी गया है–

"आपोऽनन्ताश्च विज्ञेयाः"

समस्त स्थावर और जीवों के चैतन्य धारण कराने और जीवन का कारण होने के कारण जीवन रूप जल के बिना किसी की भी प्रवृत्ति कहीं भी नहीं होती। शब्द कल्पद्रुम में यह श्लोक जल की वृत्ति का निरूपण करते हुए सार प्रस्तुत करता है।

क्लेदनं पिण्डनं तृप्तिः प्राणनम् आप्यनोदनम्।
तापापनोदो भूयस्त्वमम्भसो वृत्तयास्त्वमाः।।

आर्द्र करना,पिण्डबनाना, तृप्ति, प्राण देना, प्राप्य होना, गतिशीलता, ताप को दूर करना, अधिकता से प्राप्ति ये जल की वृत्तियाँ है।

पृथिवी पर जल की स्थिति

पृथिवी लोक मानवों की निवास–भूमि है। प्राणियों के जीवन का आधार जल पृथिवी पर विविध रूपों में स्थित है–

त्रीणिच्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन् आर्पितानि।।[16]

पृथिवी पर जल का मुख्य स्रोत वर्षा का जल ही है। जनसंख्या का घनत्व, राष्ट्र की जीवन जीवनशैली और धार्मिक परम्पराएँ, वर्षा की मात्रा, जलाशयों की स्थिति, पृथिवी की जल धारण करने की क्षमता अर्थात् नदियों की गहनता और विशालता, शैलसंरचना, वनों का अनुपात, मानवीय आवास पर जल की उपलब्धि के नियन्त्रक है। पृथिवी की ऊपरी सतह पर मिट्टी में भी अनेक रूपों में जल की प्राप्ति होती है, जिसका कारण भूगर्भ में फैली शिराओं में जल प्राप्त होता है, साथ ही वायुमण्डल भी आर्द्रता के रूप में अथवा वाष्परूप में जल सन्निहित रहता है। मिट्टी में जल के नाना रूपों का विवरण इस प्रकार है–

[16] अथर्ववेद 18/1/17

1. **गुरुत्वीय जल** –गुरुत्वाकर्षक के बल से वर्षा का कुछ जल मिट्टी के नीचे प्रविष्ट होकर, भूगर्भीय जलस्तर को प्राप्त करता है।

2. **कोशिकीय जल** –पौधे वर्षा के जल को अपनी जड़ों के द्वारा ग्रहण करते हैं। वर्षा के जल का कुछ भाग मिट्टी के आन्तरिक भागों में रहता है।

3. **आर्द्रताग्राही जल** – आर्द्रताग्राही जल से अभिप्राय ऐसे जल से है, जो मिट्टी के कणों के चारों ओर वाष्प रूप में प्राप्त होते हैं।

4. **क्रिस्टलीय जल** –मिट्टी में उपस्थित कुछ जल का भाग मिट्टी के साथ रासायनिक प्रक्रिया से सम्बद्ध होते हैं। यह जल क्रिस्टलीय जल कहा जाता है। यही ओषधियों में व्याप्त 'रस' रूप जल है।

25.4 जलवायु मण्डल में जल की स्थिति

मेघ जलवायु मण्डल में जल का आधार है। मेघ विविध रूपों में जल को धारण करते हैं तथा सौर चक्र से प्रभावित होकर जल की स्थिति का निर्धारण करते हैं। मेघ सात अर्थात् जीमूत, आवहन् धाराधारा, पुष्करावर्तक, पर्जन्य, परिवह तथा पुण्ड्र नामक वायुओं को आवरण मण्डल स्वरूप अन्तरिक्ष कहे जाते है। मत्स्यपुराण में वर्षा कारक मेघों की चर्चा प्राप्त होती है। यथा–

जीमूता नाम ते मेघा यदेभ्यो जीवसम्भवः।।
द्वितीय आवहन् वायुर्मेघास्त त्वभिसंश्रिताः।
वृष्टि सर्गस्तथा तेषां धाराधाराः प्रकीर्तिताः।
पुष्करावर्तका नाम ये मेघा पक्षसम्भवाः।।
पुष्करा नाम ते पक्षा बृहन्तस्योयधारिणः।।
गजानां पर्वतानांच मेघानां भोगिभिः सह।
कुलमेकं द्विधाभूतं योनिरेका जलं स्मृतम्।।
पर्जन्यो दिग्गजश्चैव हेतन्ते शीतसम्भवम्।।
तुषारवर्षं वर्षन्ति वृद्धाः ह्यन्नविवृद्धये।
षष्ठः परिवहो नाम वायुस्तेषां परायणः।
योऽसौ विभर्ति भगवन्! गङ्गामाकाशगोचराम्।।
तस्या विस्पन्दितन्तोयं दिग्गजा पृथुभिः करैः।।
शीकरान्सम्प्रमुंचन्ति नीहार इति स्मृतः
उदग्हिमवतः शैलस्योत्तरे चैव दक्षिणे
पुण्ड्रं नाम समाख्यातं सम्यग्वृष्टिविवृद्धये।।

इस प्रकार जलवायु निर्माण में जीमूत से भिन्न छः प्रकार की अलग–अलग वायुओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। आवह्न–अन्तरिक्ष में विचरण करता हुआ वायुमण्डल की रचना करता है। धाराधारा में वर्षाजन की आन्तरिक धारा होती है, जिससे वर्षा जल की सृष्टि होती है। यह वह वायु आवरण प्रतीत होता है जिसके द्वारा वाष्परूप में स्थित जल की तरलीकरण के लिए रसायनिक प्रक्रिया होती है।

पुष्करावर्तक का सम्बन्ध मेघ–वृद्धि को प्राप्त जल को धारण करने वाली वायु से है। तथा पर्जन्य के शीतकाल में हेमन्त में ठण्डे किये जल की तुषार रूप में वर्षा होती है। परिवह नामक वायु द्वारा आकाशगंगा सूक्ष्मकणों से युक्त नीहारिकाओं का आकाश स्पन्दित ओस रूप जल है। पार्थिव जलवायु मण्डल को आच्छादित कर नीहार द्वारा भूमि को गीला करता है। सातवाँ पुण्ड्र नामक वायु वह है जो हिमालय की सार्थकता के लिए उसके हिम के पिघलने में उत्तरदायी है। वस्तुतः जलवायु मण्डल में वाष्प, हिम, तुषार, नीहार, इत्यादि रूपों में जल रहता है।

वराहमिहिर ने जल प्राप्ति अथवा जल की स्थिति की चर्चा बृहत्संहिता के 'दकार्गल' अध्याय में तथा गर्भलक्षणाध्याय में 'वर्षा' के सन्दर्भ में विस्तार से चर्चा की है। जिसके द्वारा अनेक वृक्ष–पुष्प, धान्य, वृक्ष संयोग, स्थान इत्यादि द्वारा जल की स्थिति का पता लगाया जा सकता है।

पृथिवी पर वृक्षों से जल की स्थिति पहचानना

वराहमिहिर के अनुसार जिस वृक्ष की एक शाखा नीचे की ओर झुकी हो और पीली पड़ गई हो, ऐसी शाखा के नीचे तीन पुरुष खोदने पर जल प्राप्त होता है–

वृक्षस्यैका शाखा यदि विनता भवति पाण्डुरा वा स्यात्।
विज्ञातव्यं शाखातले जलं त्रिपुरुषं खात्वा।।[17]

अर्थात् ऐसा स्थान जहाँ चिकना, छिद्र रहित, पत्तों से युक्त, वृक्ष, पुष्प, गुल्म या लता हो वहाँ भी तीन पुरुष पर जल प्राप्ति होगी।

स्निग्धा यतः पादपगुल्मवल्लयो निश्छिद्रपत्राश्च ततः शिरास्ति।
पद्यक्षुरोशरीरकुला सगुण्ड्राः काशाः कुशा वा नीलका नलो वा।।[18]

विशेष ऊपर की ओर हाथ उठाकर पुरुष की लम्बाई को मापकर एक पुरुष माना जायेगा। 120 अंगुल = 1 पुरुष तथा 1 पुरुष = 11.6" के लगभग मानना चाहिये।

गूलर वृक्ष से जल पहचान

निर्जल स्थान में यदि गूलर का पेड़ स्वाभाविक रूप से उगा हो, तो वृक्ष से तीन हाथ पश्चिम में ढाई पुरुष नीचे श्रेष्ठ जल की धारा होती है।

पश्चादुदुम्बरस्य त्रिभिरेव करैर्नरद्वये सार्धे।
पुरुषे सितोऽहिश्मांजनोपमोऽधः शिरासुजला।।

बेर वृक्ष से जल पहचान

बेर के पेड़ से पूर्व दिशा में यदि बॉबी हो तो पेड़ से तीन हाथ पश्चिम में जाकर तीन पुरुष पर जल की प्राप्ति होती है।

तिलक वृक्ष से जल स्थिति पहचान

तिलक वृक्ष के दक्षिण में यदि बॉबी हो बॉबी पर घास व कुशाएँ उगी हों तो उस वृक्ष से पश्चिम में पाँच हाथ दूर पर पाँच पुरुष नीचे जल होता है।

---

17 बृहत्संहिता दकार्गलाध्याय, श्लोक 55
18 बृहत्संहिता दकार्गलाध्याय, श्लोक 100

वल्मीकः स्निग्धो दक्षिणेन तिलकस्य सकुशदूर्वश्चेत्।
पुरुषै पंचभिरम्भे दिशिं वारुण्यां शिरा पूर्वा।।[19]

वाष्प और धूम से जल ज्ञान

जिस स्थान से भाप या धुआँ निकलता हुआ दिखाई देता हो, उस स्थान पर दो 'पुरुष' अर्थात् '240 अंगुल' नीचे जल छोड़ने वाली शिराये बहती है।[20]

जल विज्ञान को समझने के लिये वराहमिहिर ने बृहत्संहिता के दकार्गलाध्याय में 86 प्रकार के वृक्षों का वर्णन किया है। अलग–अलग वृक्षों को भूगर्भ जल मापन का संकेत मानकर भूगर्भ से अलग जल की स्थिति को बतलाया है।

25.5 जल प्रकार के आधार पर जल के विभिन्न नाम

जल प्रकार के आधार जल के विभिन्न नाम वैदिक साहित्य जल के विभिन्न रूपों की चर्चा प्राप्त है। जैसे ऋग्वेद में जल के पाँच प्रकार, अथर्ववेद के अनुसार नौ, शतपथब्राह्मण के अनुसार सत्रह तथा आयुर्वेद के अनुसार सात विधाएँ होती है। जल प्रकार के आधार पर जल के विविध नाम इस प्रकार है–

1.	दिव्य जल	–	अन्तरिक्ष से वर्षा के रूप में गिरने वाला जल
3.	हेमवत् जल	–	पर्वतों से नदी रूप में उत्पन्न जल
4.	सनिष्यद जल	–	तीव्र गति से बहता हुआ जल
5.	स्रवत् जल	–	नदी में बहता हुआ स्रोतों का जल
6.	स्यन्दमान जल	–	बहता हुआ जल
7.	खनित्रिम जल	–	कुएँ एवं तालाब से खोद कर प्राप्त जल
8.	सारस्वत जल	–	सरस्वती अथवा किसी नदी का जल
9.	अशस्य जल	–	निर्झरों के स्रोतों से निकलने वाला जल
10.	स्वयंजात जल	–	स्वस्पन्दित निर्झरों से प्राप्त जल
11.	समुद्रीय जल	–	समुद्रों से प्राप्त जल
12.	समुद्रार्थ जल	–	समुद्रों से प्राप्त जल
13.	धन्वन्य जल	–	मरुस्थल का जल
14.	परिचर जल	–	नाली नहरों में बहने वाला जल
15.	अनूप जल	–	अनूप देश (दलदल) में उत्पन्न जल
16.	अनूप्य जल	–	अनूप (जल बहुल) देश का जल
17.	अनभ्रय जल	–	कुदाल आदि के द्वारा निकाला गया बिना वर्षा का जल
18.	कुम्भाभृत जल	–	घड़े का अथवा घड़ों द्वारा लाया गया जल
19.	निवेषय जल	–	तिनके या झाड़ियों से ढका हुआ सुरक्षित जल

[19] बृहत्संहिता दकार्गलाध्याय, श्लोक 37
[20] बृहत्संहिता दकार्गलाध्याय, श्लोक 10

20.	अपयत् जल	–	नदी प्रवाह से पृथक् होकर बहता हुआ जल
21.	आतपवर्षा जल	–	सूरज की धूप में बरसने वाला जल
22.	स्थावर जल	–	एक स्थान पर ठहरा हुआ वरुण–देवता का जल
23.	कूप जल	–	कुएँ का जल
24.	वैशन्त जल	–	पोखर का संचित जल
25.	मधु जल	–	मधुर जल
26.	प्रुष्व जल	–	कोहरे में विद्यमान तुषार जल
27.	गौरुल्व जल	–	गर्भाशय का जल
28.	विश्वभृत् जल	–	पिघले घी आदि के भाप के रूप में विद्यमान जल
29.	पायस जल	–	दूध में विद्यमान जल या दुग्ध जल
30.	मरीचि जल	–	वाष्पष्प किरणवत् जल
31.	धराजनितल जल	–	मूसलाधार जल
32.	सर्वविध जल	–	अन्य सभी प्रकार का जल
33.	तुषारजनित जल	–	ओस का जल
34.	करकाजनित जल	–	ओले का जल
35.	साधारण जल	–	सामान्य जल
36.	जाङ्गल जल	–	दलदली भूमि का जल
37.	हिमजनित जल	–	बर्फ का जल

इस प्रकार जल के विविध रूपों एवं नामों का विवरण प्राप्त होता है। सामान्य जीवन में भी पीने योग्य जल को पानी और गंगा में उपस्थित जल को श्रद्धा भाव से जल की संज्ञा से जाना जाता है। अतः जल अपने स्वरूप भेद से जैसी अवस्था को प्राप्त करता है वह स्थान, जलवायु, गुण, स्थिति एवं प्रयोग के आधार पर गुणों को धारण करता हुआ अलग–अलग नामों से अभिहित है।

25.6 जल चक्र (Hydrological Cycle)

पृथिवी पर जल का मुख्य जलचक्र ही है जल चक्र की विभिन्न प्रक्रियाओं में से एक पृथिवी की सतह से वायुमण्डल में जल का स्थान परिवर्तन है। वस्तुतः जल चक्र प्रक्रिया में पृथिवी पर उपस्थित जल सूर्य ताप के कारण वाष्पित होकर वायुमण्डल में जल वाष्प का रूप धारण करता है। तदन्तर ये जलवाष्प ठंडी होकर वायुमण्डल में बादल बनाती है। बादलों द्वारा यह जल वर्षा, ओले अथवा बर्फ के रूप में वापस जमीन पर आ जाता है। यह एक सतत् प्रक्रिया है।

अथर्ववेद के अनुसार सूर्य की वर्षाकालीन किरणें क्षीर अर्थात् पानी की बूँदे टपकाती है, फिर तपती हुई किरणें उसी मार्ग से उन्हें वापस खींच लेती है।

कृष्णं नियायं हरयः सुवर्णाः अपाना दिवमुत्पतन्ति।
त आववृत्तन्त्यसदानादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यूदुः।।[21]

[21] अथर्ववेद 6/3/22/1

मन्त्र में इन किरणों को सुपर्ण और हरि कही गई है। हरि अर्थात् जल हरण करने वाली सुपर्ण अर्थात् नीचे उतरती सुन्दर रश्मियाँ, समयानुसार उड़ते काले मेघ को पानी से भरती हुई फिर उड़ जाती हैं। प्राचीन समय में ही हमारे वैज्ञानिक ऋषियों द्वारा वर्षा प्रक्रिया को भली–भाँति जान लिया था। यथा–

समानमेतदुदकमुच्चैत्यवचाहभिः।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः।।

अर्थात् जल एक समान रूप में रहता है। ग्रीष्म ऋतु में वह उर्ध्वगामी और वर्षा ऋतु के समय नीचे की ओर आता है मेघ, पर्जन्य इसीलिए कहलाते हैं, क्योंकि वे अन्न, वनस्पति इत्यादि को पुष्ट करके सृष्टि पर जीवों को तृप्त करते हैं।

पार्थिव जल के वर्षा रूप में परिवर्तित होने के तीन चरण है– (1) गमन अथवा गर्भधान, स्थिति अथवा दोहन (3) वर्षण अथवा प्रसव।

सप्तार्द्धगर्भा भुवनत्य रेतो विष्णोतिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परिभवन्ति विश्वतः।।[22]

जलमात्रा द्युलोक में 6 महीने 15 दिन प्रतिष्ठित रहती है। तदनन्तर वर्षा हो जाती है। यह छ महीने 15 दिन का समय ही गर्भस्थिति का काल है जिस दिन गर्भधान होता है उस दिन यदि पूर्व दिशा में गर्भधान है, तो 196वें दिन पश्चिम दिशा में मेघ वृष्टि करते हैं। यदि पश्चिम में गर्भाधान होगा तो पूर्व की ओर से वृष्टि होगी। इस प्रकार यदि दक्षिणदिशा में गर्भ है तो उत्तर से, उत्तर में गर्भ है तो दक्षिण में वृष्टि होगी। यदि दिन में गर्भाधान है तो रात्रि में, यदि रात्रि में गर्भाधान है, तो दिन में वृष्टि होगी। यथा–

यन्नक्षत्रमुपगते गर्भश्चन्द्रे भवेत् स चन्द्रवशात्।
पंचनक्ते दिनशते तत्रैव प्रसवमायाति।।
सितपक्षभवाः कृष्णे शुक्ले कृष्णा द्युसम्भवा रात्रौ।
नक्तं प्रभवाश्चाहनि सन्ध्याजाताश्च सन्ध्यायाम्।।[23]

शीतकाल गर्भकाल है, ग्रीष्मकाल दोहनकाल तथा वर्षा काल प्रसवकाल है। वराहमिहिर गर्भलक्षण अध्याय में वर्षा काल के प्रयोजन, गर्भलक्षण की प्रशंसा, मेघ गर्भ के दिन व काल, गर्भलक्षण विचार, गर्भघात के लक्षण इत्यादि वर्षा सम्बन्धित विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

वराहमिहिर ने अपने बृहत्संहिता के गर्भलक्षणाध्याय में गर्भघात (वर्षा न होने) के लक्षण बताते हुए कहा है कि गर्भ लक्षण धारण के बाद, यदि उल्कापात् हो, बिजली गिरे, धूल भरी हवाएँ चलें, दिशाएँ प्रज्ज्वलित हो अधिक लाल बादलों की लपेट सी दिखें। भूकम्प आए, तेज स्वर के साथ हवा बवंडर चले तो गर्भ की हानि अथवा नाश होता है।

गर्भोपघातलिङ्गान्युल्काशनिपाशुपातदिग्दाहाः।
क्षितिकम्पखपुरकीलककेतुग्रहयुद्धनिर्घाताः।।
रुधिरादिवृष्टि वैकृतपरिघेन्द्रधनूषि दर्शनं राहोः।

[22] ऋग्वेद 1/1/64/36
[23] वराहमिहिर, गर्भलक्षणाध्यायः, श्लोक 7–8

इत्युत्पातै रेतैस्त्रिविधैश्चान्यैर्हतो गर्भः।।[24]

इस प्रकार जल चक्र सृष्टि में जलीय सन्तुलन को बनाये रखने में सहायक है। यह एक सतत् चलने वाली अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसकी सहायता से ही सृष्टि के कण–कण में भिन्न–भिन्न रूपों में जल की स्थिति बनी रहती है। जल चक्र के वायुमण्डल की ऊष्मा को अवशोषित करने के कारण भूमण्डलीय ऊष्मा को भी कम करता है। यही ऊष्मा जलवायु के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।

25.7 जल रोग कारक तथा निवारक

सृष्टि के जड़ चेतन सभी पदार्थों के लिए जल एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। मानवीय सृष्टि क आधार तथा समग्र सौन्दर्य का व्यवस्थापक जल ही है। वैदिक ज्ञान के अनुसार सोम और अग्नि तत्त्व 'आपः' में विद्यमान रहता है। जल औषधियाँ अर्थात् सभी प्रकार के रोगों को दूर करने में समर्थ है तैत्तिरीय आरण्यक में जल को अमृत कहा गया है–

"अमृतं वै आपः"

जल पीने से पीपासा तो शान्त होती है। साथ ही गैस कब्जादि रोग भी दूर हो जाते हैं। समुद्र के पानी में स्नान से अनेकों प्रकार के चर्म रोग दूर हो जाते हैं। रक्त प्रवाह भी अच्छा रहता है। पाचन शक्ति मजबूत होती है और अनेक प्रकार से आरोग्य प्राप्त होता है।[25] प्रायः अनेकों प्रकार के रोग जल चिकित्सा से साध्य है। प्रातः काल में खाली पेट पानी पीने से मानव–शरीर निरोगी रहता है। अथर्ववेद में जल को रोगनाशक और आयुवर्धक कहा है।

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनी[26]

चिकित्सा शास्त्र के अनुसार भिन्न–भिन्न स्रोतों से प्राप्त जल का प्रयोग रोग कारक एवं निवारक कहा गया है। यथा–

सक्षारं पित्तकृत्कौपं दीपनं नातिवातलम्।
सारसं स्वादु लघु च ताटाक गुरु वातलम्।।
चौण्डयं तु पित्तलं दोषहरं प्रसवणोदकम्।
औद्भिदं स्वादु पित्तघ्नं स्वादु वापीजलं लघु।
नादेयं वातलं रूक्षं कटुकं च तथाऽऽदिशेत।।
धन्वानूपमहीध्राणां सामीप्याद् गुरुलाघवम्।[27]

अर्थात् कूप का जल क्षार गुण युक्त तथा पित्त का कारक, सारस (छोटा ताल) जल अग्निदीपक, अल्पवात कारक, मधुर तथा लघु होता है। ताटाक का जल गुरु तथा वातकारक चौण्ड्य (पत्थर के नीचे स्थित जल) का जल पित्तकारक, झरने का जल त्रिदोषहर, औद्भिद (साधारण भूमि से निकलने वाला जल) जल मधुर एवं पित्तनाशक, वापी (कुए सादृश जिसमें नीचे जाने के लिए सीढ़ियाँ होती है) का जल मधुर एवं लघु तथा नदी का जल वातकारक, रुक्ष तथा कटु होता है। धन्वदेश (जंगल प्रदेश), आनूप

---

24 वराहमिहिर, गर्भलक्षणाध्यायः, श्लोक 25–26
25 ऋग्वेद 10/137/6
26 अथर्ववेद 3/12/9
27 अष्टाङ्गसंग्रह, सूत्रस्थानम् 13–15

देश या पर्वतीय प्रदेश के सामीप्य से कूप आदि के जल में अधिकता एवं न्यूनता समझनी चाहिए। नदियाँ पृथक्–पृथक् स्थान से निकलने के कारण भिन्न–भिन्न गुण–दोष वाले जल से युक्त हो जाती है। यथा–

पश्चिमोदधिगाः शीघ्रवहा याश्चवामलोदकाः
पथ्याः समासात्ता नद्यो विपरीतास्ततोऽन्यथा।
उपलास्फालनाक्षेपविच्छेदैः खेदितोदकाः।।
हिमवन्मलयोद्भूताः पथ्यास्ता एव च स्थिराः।
कृमिश्लीपदहृत्कण्ठशिरोरोगान् प्रकुर्वते।।
प्राच्यावन्त्यपरान्तोत्था दुर्नामानि महेन्द्रजाः।
उदरश्लीपदातङ्कान् सह्यविन्ध्यभवाः पुनः।।
कुष्ठपाण्डुशिरोरोगान् दोषहन्यः पारियात्रजाः।
बलपौरुषकारिण्यः सागराम्भस्त्रिदोषकृत्।।[28]

अर्थात् जो नदियाँ पश्चिमी समुद्रों में गिरती है। अत्यन्त तीव्र गति से बहती है, निर्मल जल से युक्त है। ये सभी नदियाँ पथ्य अर्थात् हितकारी है। इसके विपरीत लक्षणों से युक्त नदियाँ अहितकारी (अपथ्य) है। हिमालय तथा मलयाचल पर्वत से निकलकर पत्थरों पर गिरता हुआ स्थान–स्थान पर छिन्न–भिन्न होता है, इस कारण से उस जल का मन्थन हो जाता है, जिससे वह प्राणिमात्र के लिए हितकारी बन जाता है तथा जिन नदियाँ जल स्थिर अथवा मन्द गति वाला होता है। उन नदियों का जल क्रमि युक्त तथा रोगों को उत्पन्न करने वाला कहा गया है। प्राच्य (पूर्वी प्रदेश–गौड़ प्रदेश बंगाल), अवन्ती (मालवा प्रदेश उज्जैन) तथा अपरान्त (कोंकण प्रदेश) से उत्पन्न होने वाली नदियाँ अर्श रोग को उत्पन्न करती है। महेन्द्र पर्वत से उत्पन्न होने वाली नदियाँ उदर रोग को उत्पन्न करती है। सह्य और विन्ध्याचल नदियों का जल कुष्ठरोग, पाण्डुरोग एवं शिरोरोग का कारण है। पारियात्र पर्वत से निकलने वाली नदियाँ त्रिदोष अर्थात् (वात्, कफ व पित्त) की रोगनाशक, बल एवं पौरुष को बढ़ाने वाली होती है। समुद्र जल वात, कफ व पित्त अर्थात् त्रिदोष को बढ़ाने वाला होता है।

अधिक मात्रा में जल सेवन से होने वाली व्याधियाँ

जल जीवन का आधार है। जल के बिना सृष्टि की कल्पना भी असम्भव है। जल यदि आवश्यकता से अधिक ग्रहण किया जाये तो हानिकारक भी हो सकता है। अर्थात् जल का सोच–विचार कर उचित मात्रा में प्रयोग अमृत तुल्य है परन्तु अनुपयुक्त मात्रा में सेवन विष के समान होता है। जिससे अनेकों रोगों की वृद्धि हो सकती है। प्यास लगने पर अधिक मात्रा में जल का उपयोग पित्त एवं कफ रोग को उत्पन्न करने वाला हो जाता है।[29]

जिसके वातादि दोष एवं अग्नि विषम हों और जिसका बल रोगों के कारण क्षीण हो उस मनुष्य के लिए साधारण जल अल्प मात्रा में भी हितकारी नहीं होता है। गुल्मरोग, पाण्डुरोग, उदररोग इत्यादि चिकित्सा शास्त्र में वर्णित रोगों से पीड़ित रोगी को चिकित्सा काल में किसी भी प्रकार के जल का निषेध कहा है, किन्तु जल के बिना प्राणधारण सम्भव न दिखाई पड़े तो रोगी को औषधियों में थोड़ा जल मिश्रित करके

[28] अष्टाङ्गसङ्ग्रह, सूत्रस्थानम्, श्लोक 16–20
[29] अष्टाङ्ग–सङ्ग्रह, सूत्रस्थानम्, श्लोक 34

पीना चाहिये।[30]

प्राकृतिक रूप से शीतल जल अनेकों रोगों को नष्ट करने वाला कहा गया है–

शीतं मदात्ययग्लानिमूर्च्छाच्छर्दिश्रमभ्रमान्।
तृष्णोष्मदाहपित्तासृग्विषाण्यम्बु निहन्ति तत्।।[31]

अर्थात् शीतल जन से मूर्छा, ग्लानि, भान्ति तथा उष्ण–आहार–विहार आदि से उत्पन्न ज्वलन, रक्त पित्त तथा विषविकार आदि रोगों का शमन होता है।

चिकित्सा ग्रन्थों में यह भी बताया गया है जलपान काल अर्थात् जल का पान कब करना और कब नहीं करना है। यथा–

भक्तस्यादौ जलं पीतमग्निसादं कृशाङ्गताम्।
अन्ते करोति स्थूलत्वमूर्ध्वं चामाशयात् कफम्।
मध्ये मध्याङ्गतां साम्यं धातूनां जरणं सुखम्।।[32]

अर्थात् भोजन काल में अन्न खाने से पूर्व जल पीने से जठराग्नि मन्द हो जाती है, जिससे शरीर में कृशता उत्पन्न होती है। अतः भोजन ग्रहण करने से कुछ क्षण पूर्व जल नहीं पीना चाहिये। भोजन के बाद जल पीने से शरीर में स्थूलता तथा आमाश्य के कफ की वृद्धि होती है तथा भोजन के मध्य में जल पीने से अङ्गों में समता होती है, और रसायनों इस प्रकार ग्रहण किया जल अन्न को पचाने में सहायक होता है। जल सम्पूर्ण जगत् के जीवन का आधार है, इसी से सम्पूर्ण सृष्टि का अस्तित्व दृश्यमान हुआ है। अतः जल जीवन के लिए ईश्वर प्रदत्त वरदान है।

25.8 जल संरक्षण

प्राचीन वैदिक संस्कृति में जल को जीवन का आधार कहा है। वेदों में जल संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। नदियाँ जल प्रवाहित करती हुई प्राणिमात्र को तृप्त करती है। अतः जल का संरक्षण आवश्यक है। जल संरक्षण के सम्बन्ध में ऋग्वेद में कहा गया है–

"आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन ना घृत्वः पुनन्तु।"[33]

अर्थात् जल को माता सदृश कहा है। घृत के समान जल हमें शक्तिशाली और उत्तम बनाये। इस तरह के जल जिस भी रूप में जहाँ कही भी हो वे रक्षा करने योग्य है। वर्षा के जल को संरक्षित करना चाहिये क्योंकि वर्षा का जल सर्वाधिक शुद्ध जल होता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि वर्षा का जल सभी के लिए कल्याणकारी है।

"शिवा नः सन्तु वार्षिकीः।"[34]

जल अमृत तुल्य है। यह जल जब पार्थिव तत्त्वों के सम्पक्र में आता है, तब यह जल हित व अहितकारी भेद वाला हो जाता है। यथा–

---

[30] अष्टाङ्ग–सङ्ग्रह, सूत्रस्थानम्, श्लोक 38–40
[31] अष्टाङ्ग–सङ्ग्रह, सूत्रस्थानम्, श्लोक 43
[32] अष्टाङ्ग–सङ्ग्रह, सूत्रस्थानम्, श्लोक 41–42
[33] ऋग्वेद 10/17/10
[34] अथर्ववेद 1/6/4

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

गङ्गाम्बु नभसो भ्रष्टं स्पृष्टं त्वर्केन्दुमारुतैः।।
हितहित्वे तद्भूयो देशकालावपेक्षते।।

अर्थात् गङ्गा का जल (अर्थात् जो धारा गंगा जल के समान निर्मल व पवित्र है) जब आकाश से गिर सूर्य की किरणों और वायु के सम्पक्र में आता है। ऐसी स्थिति में देश काल के अनुसार शुद्ध अशुद्ध का विचार करना अपेक्षित है। जल स्वभाव से शुद्धि करने वाला पवित्र तथा स्वच्छता का कारक होता है। अतः इसकी पवित्रता का रक्षण प्राणिमात्र का कर्त्तव्य है। वर्तमान समय की स्थिति कष्टकारक है कि लोग सार्वजनिक जल स्थानों को अनेकों दूषित पदार्थों से दूषित बना रहे हैं। संस्कृत साहित्य में जल के सम्बन्ध में अनेकों नीतिवाक्य है, उनका यदि लोग पालन करें जल का संरक्षण सम्भव है। जल का संरक्षण वस्तुतः प्राणिमात्र का संरक्षण है। यजुर्वेद में भी जल को नष्ट न करने का संदेश मिलता है। यथा–

"मा आपो हिंसी"[35]

कौटिल्य ने भी वर्षा जल को स्वच्छ जल कहा है–

"नास्ति मेघसमं तोयम्"[36]

वैदिक साहित्य में प्राकृतिक तत्त्वों को 'देव रूप' में प्रतिष्ठित करते हुए हमारे प्राचीन मुनियों ने पर्यावरण संरक्षण का नित्य विधान किया है। मनुष्य निरन्तर प्राकृतिक तत्त्वों के प्रति अपने दायित्व का पालन करने से सभी प्राकृतिक तत्त्वों के प्रति संवेदनशील एवं संरक्षण में समर्थ होता है। विदूरनीति, चाणक्यनीति, मनुस्मृति इत्यादि ग्रन्थों में मनुष्य के धर्मों का निर्देश करते हुए जल को दूषित करने का निषेध किया गया है।

नाप्सुविण्मुत्राचरेत्।[37]
नोत्तरेदनुपस्पृश्य, नाप्सु रेतः समुत्सृजेत्।
अमेध्यालिप्तमर्हं वा, लोहितं वा विषाणि वा।।[38]
व्यतिक्रामेन्न स्रवन्तीं नाप्सु मैथुनमाचरेत्।
...नाप्सु ष्ठीबनमाचरेत्।।[39]

वेदों में जल प्रदूषण को रोकने सूर्य को महत्त्वपूर्ण माना है। सूर्य की किरणे जल सहित अनेकों प्रदूषण को रोकने में समर्थ है।

उत् सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन्।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टाहा।।[40]

ऋग्वेद में भी सूर्य को दृष्ट अदृष्ट समस्त पर्यावरणीय तत्त्वों के प्रदूषण को रोकने वाला कहा गया है।

सूर्ये विषमया सजामि[41]

---

35 यजुर्वेद 6/22
36 कौटिल्य, अध्याय–5, सूत्र 17
37 पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड 55.65
38 पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड 55.75
39 पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड 55.76
40 अथर्ववेद 6/5/2/1
41 ऋग्वेद 1/191/10

सभी मनुष्यों को सदैव जल संरक्षण के लिए तत्पर रहना चाहिये। निर्जल स्थानों पर भूमिगत जल की उपलब्धि के लिए जो कुओं को निर्मित कराता है। वह जल की एक–एक बूँद के प्रमाण से स्वर्ग में निवास करता है।

एवं निरुदके देशे, यः कूपं कारयेद् बुधः।
बिन्दौ बिन्दौ च तोयेन, वसेत्संवत्सरं दिवि।।

पद्मपुराण में कहा गया है कि वर्षा के जल को सुरक्षित रखने हेतु जो व्यक्ति जितने परिमाण का गड्ढा खोदता है। उतने हजार वर्षों तक मनुष्य स्वर्ग में प्रसन्न रहता है।

मेघे वर्षति खाते च, जायन्ते ये तु शीकराः।
तावद्वर्षसहस्राणि, दिवमश्नाति मानवः।।[42]

आधुनिक समय में जल के शुद्धि के लिए क्लोरिन आदि रासायनिक द्रव्यों का प्रयोग होता है। कैल्शियम, सोडियमपरपोक्लोराइट, क्लोरीन क्लोरीनडाइ ऑक्साइड ब्लीचिंग चूर्ण आदि के प्रयोग द्वारा जल को बैक्टीरिया रहित किया जाता है। शास्त्रीय परम्परा में जल शोधन की व्यवस्था का वर्णन प्राप्त होता है–

निन्दितं चापि पानीयं क्वथितं सूर्यतापितं।
सुवर्ण रजत लोहं पाषाणं सिकता मृदम्।।[43]

वैदिक परम्परा एक यज्ञीय प्रधान परम्परा रही है। यज्ञों के द्वारा विविध रोग–निदान एवं पर्यावरण शुद्धि के अनेकों प्रसंग प्राप्त होते हैं। जल की शुद्धि भी यज्ञ द्वारा सम्भव है। जल का मुख्य स्रोत वर्षा है। वर्षा के लिए यज्ञों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। दयानन्द सरस्वती ने यजुर्वेद में अनेक मन्त्रों से जल शुद्धि का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार यज्ञ एवं अनुष्ठान से हवा एवं जल की शुद्धि होती है। जो मनुष्य यज्ञादि के माध्यम से जल को शुद्ध करके सेवन करता है, उसके जीवन में सुख रूपी अमृत की वर्षा होती है।

"वृष्टिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्"

अर्थात् यज्ञों के द्वारा स्वच्छ, पवित्र तथा संस्कारित जल का निर्माण होता है।

25.9 सारांश

जल समस्त प्रकृति की प्रेरक शक्ति है। वैदिक साहित्य में जल के महत्त्व, गुण एवं संरक्षण की चर्चा अनेकों बार की गयी है। ऋग्वेद में नदी सूक्त, पर्जन्य सूक्त, इन्द्र सूक्त तथा आपः इत्यादि सूक्तों में जल के महत्त्व को प्रदर्शित किया है। वैदिक साहित्य में मनुष्य प्रकृति के प्रति आस्थावान् था। इसी कारण से जीवन सुखमय था। प्राकृतिक तत्त्व, आस्था से जुड़े होने के कारण नदियों के जल अशुद्ध होने पर उनकी शुद्धि हेतु विशाल स्तर पर अभियानों का संकेत भी प्राप्त होता है।

"यन्नदीषु..........परि जायते विषम्"[44]

जल एक प्राकृतिक संसाधन है, जिसकी प्राणियों को नित्य आवश्यकता है। जल को

[42] पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड 59.5
[43] शब्दकल्पद्रुम
[44] ऋग्वेद 7/50/4

एक बार उपयोग करने के बाद शोधन करके पुनः उपयोग योग्य बनाया जा सकता है परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि पृथ्वी पर उपयोग करने योग्य जल की मात्रा की कमी है। जिससे पृथ्वी पर जल संकट की स्थिति उत्पन्न होती है। अर्थात् एक स्थान विशेष के लोगों के जल उपयोग की माँगों को पूरा न करने को ही जल संकट कहते हैं। जल संकट से बचने, जल का उचित प्रबन्धन तथा जल विज्ञान के समस्त विषयों पर वैज्ञानिक कार्यों में सहयोग हेतु जो भारत सरकार के 'जल संसाधन मन्त्रालय' के अन्तर्गत राष्ट्रीय जल विज्ञान संस्थान नामक एक सोसायटी निर्मित है। इसका मुख्यालय रूड़की में स्थित है और यह 1997 से कार्यरत है। जल संरक्षण के लिए मनाया जाने वाला दिवस विश्व जल दिवस के नाम से जाना जाता है। विश्व जल दिवस 22 मार्च को मनाया जाता है।

25.10 उपयोगी पुस्तकें

1. संस्कृत साहित्ये जल विज्ञानम्– डॉ. नवलता
2. बृहत्संहिता– वराहमिहिर
3. संस्कृत वाङ्मय में जल विज्ञान– दिल्ली संस्कृत अकादमी
4. अष्टाङ्गसङ्ग्रह– डॉ. रविदत्त त्रिपाठी व्याख्याकार
5. ऋग्वेदभाष्यभूमि– दयानन्द
6. वेदविज्ञान विश्वकोश– मधुसूदन ओझा
7. स्वस्थवृत्त विज्ञान– श्रीराम हर्ष सिंह
8. पद्मपुराण– वेदव्यास
9. निरुक्तवृत्ति– प्रो. ज्ञानप्रकाश शास्त्री

25.11 अभ्यास प्रश्न

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों के सत्य/असत्य में अन्तर दीजिये–

1. जल का अपना कोई स्वाद, रूप व आकार नहीं होता है। (सत्य/असत्य)
2. वराहमिहिर ने बृहत्संहिता के अध्याय 54 में भूमिगत जल की चर्चा की है। (सत्य/असत्य)
3. निरुक्त के अनुसार अक्षर जल का पर्याय है। (सत्य/असत्य)
4. आकाश से पतित जल सबसे अशुद्ध होता है। (सत्य/असत्य)
5. न्यायसिद्धान्त मुक्तावली में जल में चौदह गुणों को स्वीकार किया है। (सत्य/असत्य)
6. क्रिस्टलीय जल मिट्टी के कणों से चारों ओर वाष्प रूप में प्राप्त होता है। (सत्य/असत्य)
7. अथर्ववेद में जल के 10 रूपों की चर्चा प्राप्त होती है। (सत्य/असत्य)
8. परिचर जल से अभिप्राय नाली, नहरों में बहले वाले जल से है। (सत्य/असत्य)

9. अत्यन्त तीव्र गति से प्रवाहित नदियों का जल दूषित होता है। (सत्य/असत्य)

10. जल दिवस 22 मार्च को मनाया जाता है। (सत्य/असत्य)

प्र.2 रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए–

1. एक स्थान विशेष के लोगों के जल उपयोग की माँगों को पूरा न करने को .... कहते हैं।

2. अथर्ववेद में जल के .... भेद कहे हैं।

3. विश्व जल दिवस .... को मनाया जाता है।

4. सबसे शुद्ध जल .... का कहा गया है।

5. आपः सूक्त का सम्बन्ध .... से है।

प्र.3 एक अथवा दो शब्द में उत्तर दीजिए–

1. इस भूमण्डल पर कितने प्रतिशत जल है?

2. वराहमिहिर की जल विज्ञान से सम्बन्धित रचना है।

3. औषधियों में जल किस रूप में व्याप्त है?

4. शतपथ ब्राह्मण के अनुसार जल के कितने प्रकार है?

5. वर्षा के जल को क्या कहा जाता है?

प्र.4 बहुविकल्पीय प्रश्न–

1. ऋग्वेद में जल के कितने प्रकार कहे गये हैं?

(क) आठ (ख) तीन (ग) पाँच (घ) दस

2. जल का रासयनिक सूत्र है–

(क) भ्$_2$ट (ख) ट$_2$ (ग)`ट$_2$ (घ) ब्$_2$

3. राष्ट्रीय जल विज्ञान संस्थान का मुख्यालय कहाँ स्थित है?

(क) लखनऊ (ख) दिल्ली (ग) रूड़की (घ) मेरठ

4. विश्व जल दिवस किस तिथि को मनाया जाता है?

(क) 24 मार्च (ख) 22 फरवरी (ग) 22 मार्च (घ)28 अप्रैल

5. पायस जल से अभिप्राय है–

(क) मूसलाधार जल (ख) दूध में विद्यमान या दुग्ध जल

(ग) ओस का जल (घ) कुएँ का जल

25.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उ.1 प्रश्नों के उत्तर सत्य/असत्य

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
6. असत्य
7. असत्य
8. असत्य

4. असत्य
5. सत्य
9. असत्य
10. सत्य

उ.2 रिक्त स्थान की पूर्ति–

1. जल संकट
2. नौ
3. 22 मार्च
4. वर्षा
5. ऋग्वेद

उ.3 एक शब्द के प्रश्नों के उत्तर

1. 71 प्रतिशत
2. बृहत्संहिता
3. रस
4. सत्रह
5. दिव्य जल

उ.4 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1. (ग) पाँच
2. (क) H_2O
3. (ग) रूड़की
4. (ग) 22 मार्च
5. (ख) दूध में विद्यमान या दुग्ध जल

बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर का मूल्यांकन अध्यापक स्वयं करें।